मार्क्सवाद
परिचय माला 1

कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं

शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं

लेखक

शिव वर्मा

प्रकाशक

गार्गी प्रकाशन
1/4649/45बी, गली न0 -4,
न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली-110032
e-mail: gargiprakashan15@gmail.com

कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं

लेखक : शिव वर्मा

प्रथम संस्करण : 1958
प्रस्तुत संस्करण : 2014
प्रथम पुनर्मुद्रण : 2017

मूल्य : 10 रुपये

मुद्रक : प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स ए-21 झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया,
जी.टी. रोड शाहदरा, दिल्ली-95

प्रकाशकीय

मार्क्सवादी परिचय माला की पाँच पुस्तिकाएँ स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, शहीदे आजम भगत सिंह के साथी स्व. शिव वर्मा ने लिखी थीं। इनका पहला संस्करण 1958 में प्रकाशित हुआ था। तब से इनकी लाखों प्रतियाँ पाठकों तक पहुँच चुकी हैं और लगभग आधी सदी तक नयी पीढ़ी को मार्क्सवाद से परिचित कराने में इन पुस्तिकाओं का अनुपम योगदान रहा है। इनके कुछ सन्दर्भ और उदाहरण पुराने हो गये हैं लेकिन इससे इनकी मूल विषय वस्तु पर कोई फर्क नहीं पड़ता। ये पुस्तिकाएँ आज भी बेहद उपयोगी और प्रभावपूर्ण हैं। लगभग बीस वर्षों से इनका प्रकाशन नहीं हो पाने के कारण युवा पीढ़ी इन सरल-सुबोध-सारगर्भित रचनाओं से वंचित रही। कार्यकर्ताओं के शिक्षण-प्रशिक्षण में कारगर भूमिका निभानेवाली इन पुस्तिकाओं की हमेशा ही जरूरत रही है। इसी को ध्यान में रखते हुए इन पुस्तिकाओं का पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है। हम शिव वर्मा की क्रान्तिकारी विरासत को स्मरण करने हैं और उसे नयी पीढ़ी तक पहुँचाने का हमारा यह विनम्र प्रयास है।

गार्गी प्रकाशन

समर्पण

जिनके जीवन के कड़वे अनुभव मार्क्सवाद की सच्चाई के जीते-जागते गवाह हैं, उन्हीं मजदूरों, किसानों और उनमें काम करनेवाले अपने साथियों को

शिव वर्मा

भूमिका

मार्क्सवाद परिचय माला उन पाठकों के लिए लिखी गयी है जिन्हें मार्क्सवाद के बारे में अधिक पढ़ने या समझने का मौका नहीं मिलता।

आरम्भ में मार्क्सवाद की इस परिचय माला को आठ छोटी-छोटी किताबों में पूरा करने की बात थी, लेकिन बाद में शिक्षा शिविरों के अनुभवों के आधार पर कुछ किताबें और जोड़ दी गयी हैं। अब कुल मिलाकर 14 किताबों में माला को पूरा करने का विचार है। प्रस्तुत पुस्तक इनमें से पहली है। इसमें कम्युनिज्म क्या है और कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं इस पर विचार करने के साथ कुछ ऐसे सवालों का जवाब देने की कोशिश की गयी है जिन्हें पूँजीवाद के प्रचारक कम्युनिस्टों के खिलाफ आये-दिन उछाला करते हैं।

दूसरी किताब 'पूँजीवादी समाज' में पूँजीवाद कैसे आया, पूँजीपति कैसे मजदूरों को ठगता है, कैसे उनका शोषण करता है, इस समाज की क्या असंगतियाँ हैं, जनता के हक में इस व्यवस्था का खत्म होना क्यों जरूरी है आदि बातों पर रोशनी डाली गयी है।

समाज पर पूँजीपति अपनी लूट और शोषण को राजसत्ता और उसको चलानेवाली सरकार के सहारे लादते हैं। इसलिए तीसरी किताब 'राजसत्ता' पर है।

पूँजीपति अपनी तानाशाही को जनवाद का नाम देकर समाजवाद और कम्युनिज्म को तानाशाही कहकर बदनाम करते हैं, इसलिए चौथी किताब में पूँजीवादी जनवाद के वर्ग स्वरूप पर रोशनी डालकर उसके तानाशाही स्वरूप को बेनकाब किया गया है और पाँचवीं किताब में समाजवादी जनवाद पर प्रकाश डालकर बताया गया है कि किस प्रकार समाजवादी जनवाद ही सही मानों में जनवाद कहा जा सकता है।

छठी किताब होगी मौजूदा भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर नाम होगा "हमारा

समाज और हमारी क्रान्ति।'' भारतीय समाज का स्वरूप क्या है, समाज में किस वर्ग का क्या स्थान है, किस वर्ग को हटाना है और किसे आना है, संघर्ष का स्वरूप क्या होगा, वर्गीय लामबन्दी कैसी होगी आदि।

सातवीं किताब होगी क्रान्ति क्या, क्यों और कैसे? इसमें होगा क्रान्तिकारी आन्दोलन में सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व, मजदूर जमात की वर्ग एकता और रहनुमाई में जनता का जनवादी मोर्चा।

आठवीं, नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं किताबों में क्रमशः द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, समाज का विकास तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र पर लिखा जायेगा।

पहली किताब में बताये गये आदर्श की प्राप्ति, दूसरी में बताये गये लुटेरे पूँजीवादी समाज का अन्त, सच्चे जनवाद के लिए राजसत्ता पर सर्वहारा वर्ग का अधिकार, अपनी राष्ट्रीय आजादी के लिए भारतीय समाज में शत्रुओं से सफल संघर्ष, इसके लिए जनता के जनवादी मोर्चे का गठन आदि काम मजदूर वर्ग तब तक पूरे नहीं कर सकता जब तक उसकी अपनी एक संगठित मजबूत राजनीतिक पार्टी न हो। इसलिए बारहवीं किताब होगी पार्टी पर पार्टी क्या है, वह कैसे काम करती है, मजदूर वर्ग से उसका क्या सम्बन्ध है आदि।

तेरहवीं किताब में संगठन के ठोस प्रश्नों के सिलसिले में सामने आनेवाले कुछ पार्टी विरोधी रुझानों और उनके घातक परिणामों की चर्चा की जायेगी।

आखिरी किताब में होगा "कम्युनिज्म ही क्यों?" अर्थात किस तरह आज के दिन कम्युनिज्म के अलावा और कोई रास्ता है ही नहीं।

दूसरों को समझाने का तरीका

परिचय माला की हर किताब एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हुए भी इस तरह लिखी गयी है कि उसे अलग से भी इस्तेमाल किया जा सके। अपनी सुविधा के अनुसार किताबों के क्रम को बदला भी जा सकता है। लेकिन किसी किताब को एकदम छोड़ना गलत होगा।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को पढ़ने-पढ़ाने के दो तरीके हैं। एक तरीका है, उसे कोरे सिद्धान्त की तरह किताबी तौर पर पढ़ना और दूसरा तरीका है, उसे जनता की रोजमर्रा की जिन्दगी से मिलाकर रचानात्मक तौर पर पढ़ना। किताबी तौर पर पढ़ने-पढ़ाने से मतलब है जैसे हमारे देश के स्कूलों में किताबें पढ़ाई जाती हैं या यों कहिए कि रटाई जाती हैं।

इस तरह से पढ़ना-पढ़ाना मजदूरों और किसानों को बड़ा रूखा लगता है। इससे उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पढ़ने-पढ़ाने का यह तरीका गलत है।

रचनात्मक तरीका यह है कि मार्क्सवाद की हर एक बात को अपने चारों तरफ की जिन्दगी से मिसालें लेकर उन पर लागू करते चलना। इसके बगैर मार्क्सवाद निर्जीव-सा लगेगा। मजदूर को उसके शहर और कारखानों की मिसालों के साथ समझाने से उसे मार्क्सवाद एक जिन्दा सिद्धान्त लगेगा। तभी उसे मार्क्सवाद में अपनी जिन्दगी के सब सवालों का हल नजर आयेगा। इसे कहते हैं सिद्धान्त को काम और जीवन की कसौटी पर उतारते हुए पढ़ना-पढ़ाना। इसी तरह किसानों को समझाने के लिए उनकी जिन्दगी से मिसालें लेनी चाहिए।

रचनात्मक ढंग से समझाना असाना नहीं है। उसके लिए पढ़ानेवाले साथी को पहले किताब पढ़कर उस पर सोचना पड़ेगा। रोज की जिन्दगी से मिसालें ढूढ़नी पड़ेंगी। मजदूरों और किसानों में जाकर किताब को शुरू से आखिर तक पढ़कर सुनाने का काम तो हर कोई कर सकता है। अच्छे शिक्षक का काम है मार्क्सवाद-लेनिनवाद को वर्ग संघर्ष के क्रान्तिकारी अमल, अन्तरराष्ट्रीय और घरेलू परिस्थितियों से पैदा होनेवाले रोजमर्रा के राजनीतिक कामों और सवालों के साथ मिलाकर समझाना। इस तरह समझाने से आप देखेंगे कि आपकी क्लास में आनेवाले मजदूर और किसान साथी ऊबेंगे नहीं, वे स्वयं हिस्सा लेने लगेंगे।

अपने आप पढ़नेवालों से

अपने आप पढ़ते समय भी ऊपर बताये तरीके पर ही चलना चाहिए, नहीं तो आप रट्टू हो जायेंगे या कोरे सिद्धान्तकार बनकर बहसें झाड़ेंगे लेकिन उससे अपनी जिन्दगी में आपको कोई उत्साह या प्रेरणा नहीं मिलेगी।

मेरे साथ अण्डमन में एक साथी थे जिन्होंने स्तालिन की पुस्तक "लेनिनवाद" को तेरह बार पढ़ा था। किस सफा पर क्या लिखा है यह उन्हें जबानी याद था। लेकिन वह तेरह बार का पढ़ना उन्हें कम्युनिस्ट नहीं बना सका और जेल से छूटकर एक दिन के लिए भी वे राजनीति में नहीं ठहर सके। उन्होंने किताब एक सिरे से दूसरे सिरे तक स्कूली तौर पर पढ़ी थी, उस पर सोचा न था। ऐसी पढ़ाई से कभी कुछ पल्ले नहीं पड़ता। फैशनेबुल लोगों के बीच आराम कुर्सी पर लेटकर मार्क्सवाद की बाल की खाल निकालने में तो यह पढ़ाई आपके काम आयेगी, पर अमल में वह आपकी रहनुमा या पथ-प्रदर्शक नहीं बन पायेगी।

हो सकता कि आपने "लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त" और 'कम्युनिस्ट

घोषणापत्र' के अलावा मार्क्सवाद पर कोई भी किताब न पढ़ी हो। लेकिन अगर आपने इन दो किताबों को रचनात्मक ढंग से सोच-समझकर पढ़ लिया है, तो उस साथी के मुकाबले जिसने मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन की सारी किताबों को स्कूली ढंग पर घोट डाला है, काम में आप कहीं अधिक मुस्तैद और सफल कम्युनिस्ट साबित होंगे। इन दो किताबों को पढ़ना संघर्ष में आपको आगे बढ़ाता रहेगा और जिन्दगी के उतार-चढ़ाव और थपेड़े आपको पस्त नहीं कर सकेंगे।

मेरे कहने का मतलब यह है कि मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन के शब्दों को पकड़ने और रटने के बजाय उनके भावों को समझकर उन्हें अपने चारों ओर की जिन्दगी पर लागू करते हुए पढ़ना ही मार्क्सवाद का सही अध्ययन है और ऐसी पढ़ाई ही क्रान्ति के रास्ते पर हमारी रहनुमा या पथ-प्रदर्शक बन सकेगी।

कुछ लोगों का ख्याल है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद बड़ा कठिन विषय है और उसके गूढ़ सिद्धान्तों की थाह पाना हर किसी के बस की बात नहीं है। कुछ लोग सिद्धान्त के नाम से ही घबराते हैं और कहते हैं कि यह सब नेता लोगों का काम है। एक कम्युनिस्ट के लिए ऐसी धारणाएँ गलत ही नहीं हानिकारक भी हैं। स्तालिन के शब्दों में "ऐसा समझना गलत है कि सिर्फ चन्द लोग ही सिद्धान्त को समझ सकते हैं। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त को हर कोई समझ सकता है।"

यह धारणा भी दिल से निकाल दीजिए कि "अब पढ़ने-पढ़ाने की मेरी उम्र नहीं रही।" यह सही है कि कुछ बातें बच्चे आसानी से सीख सकते हैं, लेकिन बहुत-सी बातें बच्चों के मुकाबले प्रौढ़ लोग अच्छी तरह समझ सकेंगे। अवस्था प्राप्त लोगों के पास जीवन का अपना अनुभव होता है। वे पढ़ी हुई बातों को अपने अनुभव के साथ जोड़ सकते हैं और उसकी कसौटी पर अपने नये ज्ञान को कस सकते हैं। बच्चों को यह सुविधा नहीं होती। मार्क्सवाद-लेनिनवाद जो एक सामाजिक विज्ञान है और जिसका रोज की जिन्दगी की समस्याओं से नजदीकी सम्बन्ध है उसके बारे में तो यह बात सौ फीसदी सही है। उसे जितना भुक्तभोगी समझ सकता है उतना दूसरा कोई नहीं समझ सकता।

दरअसल उम्र अधिक हो जाने पर अधिकांश लोगों की पढ़ने-लिखने की आदत छूट जाती है और तक कोई किताब लेकर पढ़ने में उन्हें अपने मन को काफी घेरना पड़ता है, थोड़ा पढ़कर किताब रख देने को जी चाहता है। क्लास से उठकर थोड़ा घूम आने को मन करता है, कभी-कभी सिरदर्द होने लगता है। तब वे ऐसा समझने लगते हैं कि अब उनमें सीखने-समझने और अध्ययन करने की क्षमता नहीं रही। लेकिन आप किताब लेकर पक्के इरादे से आधा घण्टा रोज बैठना आरम्भ कर दें

तो कुछ ही दिनों में पढ़ने-लिखने की आदत फिर वापस आ जायेगी और वही कठिन विषय आपको आसान लगने लगेगा।

कम्युनिस्ट सारी उम्र विद्यार्थी रहता है। अध्ययन उसके रोज के जीवन का अंग होता है क्योंकि वह जानता है कि ''मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा पाये हुए कार्यकर्ताओं की संख्या पर ही सब कामों की सफलता निर्भर है।''

शिव वर्मा

कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं?

हमारा आज का समाज दो हिस्सों में बँटा है शोषक और शोषित। एक वे लोग जो कि मालिक के नाम से पुकारे जाते हैं, जिनके हाथ में पैदावार के सभी साधन होते हैं और दूसरे वह लोग जिनका काम मालिकों की सेवा करना, उनके काम की चीजें तैयार करना या उनके यहाँ मेहनत करके उनकी मुनाफे की रकमों को आगे बढ़ाते रहना है।

जनता को कपड़े की जरूरत है कपड़ा बनता है सूती मिलों में। यानी सूती मिलें कपड़ा पैदा करने का साधन हैं। इसी तरह शक्कर की मिलें शक्कर पैदा करने का साधन हैं। लेकिन यह मिलें और कारखानें जनता के नहीं है। उन पर अधिकार है मिल मालिकों का, जो पूँजीपति हैं। यह पूँजीपति मिलों के मालिक तो हैं पर कभी उसमें काम नहीं करते। मिलों में काम करते हैं मजदूर। एक मिल में काम करनेवाले हजारों मजदूरों की मेहनत से जो माल बनता है उसका मालिक होता है एक पूँजीपति, क्योंकि मिल उसकी है। इस तरह पैदावार के साधनों के मालिक यह पूँजीपति खुद काम न करके दूसरों की मेहनत की कमाई पर जीते हैं। मुनाफा इनका धर्म है और यह मुनाफा आता है मजदूरों के मेहनत और पसीने की गाढ़ी कमाई से। पूँजीपति मजदूर की मेहनत का पूरा दाम न देकर उससे ज्यादा काम लेता है और इस तरह उसका पेट काटकर अपने मुनाफे की थैली को बड़ा करता है। दूसरे शब्दों में पूँजीपति मजदूर का शोषण करता है, उसे लूटता है। यह पूँजीपति जो संख्या में बहुत कम हैं मजदूरों की कमाई पर चैन करते हैं।

गाँव में जमीन अनाज पैदा करने का मुख्य साधन है। इस जमीन के मालिक हैं जमींदार, पर वे कभी उस पर खुद काम नहीं करते। जमीन पर मेहनत करता है किसान और उसकी मेहनत से जो कुछ पैदा होता है उसे लगान, नजराना आदि

की शक्ल में हड़प जाता है जमींदार। यानी यह भी पूँजीपतियों की तरह दूसरों की कमाई पर जिन्दा रहनेवाला वर्ग है।

हमारे समाज में एक तरफ वे लोग हैं, जो दूसरों की कमाई पर जीते हैं, जैसे पूँजीपति, जमीदार, महाजन, चोरबाजारी करनेवाले आदि। यह शोषक वर्ग है यह संख्या में कम है।

दूसरी तरफ वे लोग हैं जिनके पास अपने शरीर को और काम करने की अपनी शक्ति को छोड़कर अपने नाम की और कोई चीज नहीं है। मजदूरी-मेहनत के बगैर वे जिन्दा नहीं रह सकते। समाज में जो कुछ भी हम देखते हैं वह इन्हीं की मेहनत का चमत्कार है। लेकिन फिर भी यह गरीब लोग भूखे रहते हैं। यह शोषित वर्ग है और समाज में शोषक वर्ग के मुकाबले इसकी संख्या कहीं अधिक है।

जो मेहनत करे वह भूखा रहे और जो कुछ काम न करे उसका घर भरे यही हमारे आज के समाज में हो रहा है।

कम्युनिस्ट इस अंधेर नगरी को, शोषण की नींव पर खड़े इस पूँजीवादी समाज को मिटाकर उसकी जगह कम्युनिस्ट समाज की स्थापना करना चाहते हैं। कम्युनिस्ट समाज की स्थापना उनका अन्तिम उद्देश्य है।

पूँजीवादी समाज, समाजवादी समाज और कम्युनिस्ट समाज की मोटी-मोटी विशेषताएँ क्या होती हैं?

उत्तर नीचे पूँजीवादी समाज, समाजवादी समाज और कम्युनिस्ट समाज का अन्तर और उनकी अपनी-अपनी विशेषताएँ दी गयी हैं।

पूँजीवादी समाज

1. पूँजीवादी समाज दो मुख्य श्रेणियों में बँटा है पूँजीपति और सर्वहारा। पूँजीपति मिल, कारखाने, मशीन, जमीन और वे सभी साधन जिनसे दौलत पैदा होती है उनके मालिक हैं। यह वर्ग कुछ काम नहीं करता फिर भी हुकूमत पर इसी का अधिकार है, समाज में वह सारा काम जिससे जरूरत की चीजें तैयार होती हैं यानी असली उत्पादन का काम सर्वहार अर्थात आज का मजदरू वर्ग करता है। फिर भी उसके हाथ में न तो पैदावार के साधन ही होते हैं और न पैदा किए हुए माल पर उसका अधिकार। इन कारणों से सर्वहारा को मजबूरन पूँजीपतियों के हाथ अपनी काम करने की ताकत सौंपनी पड़ती है। समाज में सर्वहारा के मुकाबले पूँजीपति संख्या में बहुत कम हैं।

2. पूँजीवादी समाज जनता के लिए अभाव का समाज है। समाज में धन-दौलत के होते हुए भी जनता के लिए वह भरा पूरा समाज नहीं कहा जा सकता। इतिहास में पहले-पहले पूँजीपति वर्ग ने पैदावार के साधनों को इस हद तक विकसित किया कि उनसे समाज के हर आदमी की आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं। लेकिन फिर भी लोगों को अपनी जरूरत की चीजें नहीं मिलती। हर तरफ अभाव ही अभाव छाया रहता है यह इसलिए होता है कि पूँजीवादी समाज में चीजें जनता की जरूरतें पूरी करने के लिए नहीं बनायी जाती हैं, बल्कि मुनाफे के लिए बनायी जाती हैं। कौन-सी चीज बनानी चाहिए यह फैसला पूँजीपति करता है और वह उसी चीज को बनाता है जिसमें उसे मुनाफा होता है। मिसाल के तौर पर समाज को आवश्यकता है कपड़े की लेकिन पूँजीपतियों को मुनाफा मिलता है लड़ाई का सामान बनाने में, तो वे जनता की जरूरतों को ठोकर मारकर हथियार बनाने में लग जायेंगे। इसी तरह आम बाजार में कोई चीज कम होती है तो उसके दाम बढ़ जाते हैं, इसीलिए पूँजीपति चीजों को दबा डालता है और उस चीज की बनावटी कमी पैदा करता है। इसे जखीरेबाजी कहते हैं। पूँजीपति समाज की लाचारी का फायदा उठाता है। एक तरफ हजारों लोग भूख से तड़प-तड़पकर जान खो देते हैं और दूसरी तरफ हजारों लाखों मन अनाज समुद्र में फेंक दिया जाता है या जला दिया जाता है (अमरीका में यह अक्सर होता है) जिससे अनाज के दाम न गिरने पायें।

3. पूँजीवादी समाज शान्तिमय अन्तरराष्ट्रीय समाज नहीं है। वह एक स्वार्थी संकुचित राष्ट्रवादी समाज है। जिस तरह देश के अन्दर एक पूँजीपति अपने माल को अधिक मुनाफे पर बेचने के लिए दूसरे पूँजीपति से होड़ लगाता है उसी तरह एक पूँजीवादी देश दूसरे पूँजीवादी देश से बाजारों और उपनिवेशों के लिए होड़ लगाता है। इस होड़ का अन्त होता है बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में, जिसमें एक तरफ तो ताकतवर देश अपने से कमजोर और पिछड़े हुए देशों को गुलाम बनाते हैं और दूसरी तरफ पहले से गुलाम देशों का फिर से आपस में बँटवारा करते हैं। सर्वहारा वर्ग या जनता का इन लड़ाइयों या बन्दरबाँट में कोई हित या स्वार्थ नहीं होता। इससे पूँजीपतियों को ही फायदा होता है। मिसाल के लिए पिछली लड़ाई से हमारे देश की आम जनता को क्या मिला? महँगाई, भुखमरी, बेरोजगारी और अकाल, लेकिन पूँजीपतियों के फायदे छः गुने हो गये। जिसकी पहले एक मिल थी उसकी चार-छः हो गयीं। मुनाफाखोरों की लाखों करोड़ों की तिजोरियाँ भर गयीं।

4. पूँजीवादी समाज श्रेणी समाज है जिसमें चन्द इजारेदार पूँजीपति समाज के बहुत बड़े बहुमत का शोषण करते हैं। इस बहुमत में सिर्फ मजदूर ही नहीं,

बल्कि किसान, मध्यम श्रेणी का बाबू तबका, छोटे दुकानदार आदि सभी शामिल हैं। पूँजीपति समाज के बहुमत का शोषण आसानी से कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि वे जनता पर अपनी इच्छा लाद सकें। इस काम को वे दो उपायों से करते हैं। पहले तो वे सरकारी ओहदों पर अपने वर्ग के आदमियों को बिठाते हैं (बड़ी-बड़ी नौकरियाँ बड़े घरों के लोग ही पाते हैं) और इस तरह सरकार के जरिए जनता पर अपनी इच्छा लादते हैं। दूसरा उपाय है प्रेस, अखबार, सिनेमा, रेडियो आदि को काबू में रखकर, यानी प्रचार के साधनों पर अपना अधिकार जमाकर। प्रेसों के मालिक होते हैं पूँजीपति। अपने देश के अधिकांश बड़े अखबार, चाहे वे अंग्रेजी के हों या हिन्दी के, बड़े-बड़े पूँजीपतियों के हैं। यही हाल सिनेमा की कम्पनियों का है। टीवी और रेडियो तो सरकार की आवाज छोड़कर और कुछ बोलता ही नहीं और सरकार की आवाज का मतलब है पूँजीपतियों की आवाज।

पूँजीवादी जनतंत्रवाद कहने को तमाम जनता को चुनाव में भाग लेने का अधिकार देता है लेकिन चुनावों में खड़े वे ही हो पाते हैं जिनमें हाथ खोलकर पैसा खर्च करने की ताकत होती है। इस प्रकार विधान सभाओं (असेम्बलियों) में पैसेवालों के प्रतिनिधि ही अधिक पहुँचते हैं। पूँजीवादी जनतंत्रवाद जनता के नागरिक अधिकारों का एलान करता है, मजदूरों को सभाएँ संगठित करने का हक देता है। राजनीतिक पार्टियों को अखबार निकालने की आजादी देता है। लेकिन यह अधिकार, यह एलान, हक और आजादी तभी तक रहती है जब तक उसके जरिये पूँजीपति वर्ग की ताकत और उसके मुनाफे को आँच नहीं आती। ज्यों ही यह सब अधिकार और आजादी पूँजीपति की रकम और उसकी राजनीतिक सत्ता पर आँख उठाती है त्यों ही वह जनतंत्रवाद के नकली जामे को उतार फेंकता है और असली शक्ल में सामने आ जाता है। केरल, पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश की मिसालें हमारे सामने हैं।

पूँजीवादी जनवाद सिर्फ थोड़े से आदमियों का जनतंत्रवाद है इसीलिए यह झूठा जनतंत्रवाद है और पूँजीवादी राजसत्ता बहुमत के ऊपर अल्पमत की तानाशाही है।

5. पूँजीवादी समाज में मनुष्य को कितने ही संघर्षों का सामना करना पड़ता है व्यक्ति-व्यक्ति का संघर्ष, एक वर्ग का दूसरे वर्ग से संघर्ष, एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से संघर्ष इसके कारण समाज के अधिकांश भाग को ऊँचे सामाजिक आदर्श के लिए संघर्ष करने में कोई जोश नहीं आता और वे अपने-अपने निजी स्वार्थों के लिए लड़ने को मजबूर हो जाते हैं। इसके अलावा पूँजीवाद में अधिकतर लोग

गरीबी के शिकार हो जाते हैं। इसलिए उनकी योग्यता और हुनर से समाज को कोई फायदा नहीं हो पाता और इस तरह समाज की कितनी ही शक्तियाँ और प्रतिभाएँ बरबाद हो जाती हैं।

समाजवादी समाज

1. समाजवादी समाज और पूँजीवादी समाज का पहला बुनियादी अन्तर यह है कि समाजवाद में पैदावार और लेन-देन के सभी साधन जैसे जमीन, मिलें, कारखाने, मशीनें, बैंक आदि पब्लिक की सम्पत्ति होंगे। वे किसी एक व्यक्ति या चन्द व्यक्तियों की बपौती नहीं होंगे। इसमें एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण का अन्त हो जायेगा। पूँजीवाद में मुट्ठी-भर लुटेरों का वर्ग बहुमत की कमाई पर मौज उड़ाता है। समाजवादी समाज में हर किसी को कोई न कोई काम करना पड़ेगा। नारा होगा 'जो काम करेगा सो खायेगा' और काम दिया जायेगा मनुष्य की योग्यता और शक्ति के हिसाब से। इस समाज का चालक नारा होगा 'हर एक को उसकी क्षमता के हिसाब से काम दो और हर एक को उसके काम के हिसाब से दाम दो।' आजकल बड़े बाप का बेटा बुद्धू होने पर भी अफसरी पा जाता है और गरीब के योग्य बेटे को कोई नहीं पूछता। समाजवाद में यह नहीं होगा।

2. समाजवाद में पैदावार का संगठन आम जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। किसी श्रेणी विशेष का मुनाफा बढ़ाने के लिए नहीं। मुनाफे में होड़ मिट जाने से पैदावार की योजना के हिसाब से अधिक से अधिक चीजें तैयार की जा सकेंगी। चूँकि शुरू में इतनी चीजें नहीं होंगी कि सबकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें इसलिए लोगों को अधिक से अधिक और अच्छा काम करने के लिए प्रोत्साहित करना पड़ेगा। यह होगा काम के हिसाब से आवश्यकता की चीजें देकर। यानी जो ज्यादा और अच्छा काम करेगा उसे ज्यादा दिया जायेगा और जो कम और खराब काम करेगा उसे कम दिया जायेगा। इस तरह समाजवादी समाज में शोषण का अन्त हो जायेगा। वेतन मजदूरी की असमानता का अन्त नहीं हो पायेगा। कम्युनिस्ट समाज में यह असमानता भी खत्म हो जायेगी।

3. समाजवादी समाज में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण और क्षमता का अन्त हो जाता है। यह असली अन्तरराष्ट्रीय समाज की एक तरफ पहला कदम है लेकिन जब तक दुनिया के एक बड़े भाग में पूँजीवादी व्यवस्था कायम है तब तक युद्ध की हालतें भी कायम रहेंगी चाहे वह युद्ध दो पूँजीवादी देशों में हो या पूँजीवादी देशों और समाजवादी देशों के बीच हो। लेकिन जैसे-जैसे ज्यादा से ज्यादा

देशों में समाजवाद की स्थापना होती जायेगी वैसे-वैसे युद्ध की सम्भावनाएँ भी कम होती जायेंगी और दुनिया अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट समाज की ओर बढ़ती जायेगी।

4. पूँजीवादी समाज में पूँजीपतियों को आम जनता पर अपनी हुकूमत कायम रखने के लिए राजसत्ता की जरूरत होती है। समाज में मजदूर वर्ग को पूँजीपतियों पर अपनी हुकूमत कायम रखने के लिए राजसत्ता की जरूरत होगी इस तरह जहाँ कम्युनिस्ट समाज में राजसत्ता का अन्त हो जाता है वहाँ समाजवादी समाज में राजसत्ता रहती है। लेकिन समाजवादी राजसत्ता में और पूँजीवादी राजसत्ता में बहुत बड़ा अन्तर है। पूँजीवादी राजसत्ता पूँजीपति वर्ग और तमाम जनता को दबाकर रखती है। वह अल्पतम की राजसत्ता है। समाजवादी राजसत्ता जनता के, खासकर मजदूर वर्ग के हित में पूँजीपति वर्ग को दबाकर रखती है। वह बहुमत की राजसत्ता है।

मजदूर वर्ग को समाजवादी समाज में राजसत्ता की जरूरत इन बातों के लिए पड़ती है, (1) पूँजीपति वर्ग की ताकत को कुचलने के लिए जिससे देश के अन्दर वे फिर से सर न उठा सकें (2) समाजवादी आधार पर बहुत बड़े पैमान पर पैदावार को संगठित करने के लिए (3) जनता को समाजवादी सिद्धान्तों से पूरी तौर पर शिक्षित करने के लिए और (4) समाजवादी देश को पूँजीवादी देशों के हमलों से बचाने के लिए।

समाजवादी राजसत्ता सही माने में जनतंत्रवादी राजसत्ता है क्योंकि यह अल्पतम के खिलाफ बहुमत की राजसत्ता है यानी यह मुट्ठी-भर पूँजीपतियों के खिलाफ तमाम मेहनतकश जनता के स्वार्थों की प्रतिनिधि है। इतना ही नहीं यह पब्लिक के कामों में और राजसत्ता के कामों में आम जनता के अधिक से अधिक लोगों को जिम्मेदारी के पदों पर खींचती है। अर्थात तमाम जनता को समाज के प्रति जिम्मेदारी की शिक्षा देकर कम्युनिस्ट समाज में राजसत्ता के समाप्त हो जाने का रास्ता साफ करती है।

5. शोषण के खत्म हो जाने पर लोगों का काम की तरफ रुख भी बदल जायेगा। आज वह सिर्फ रोजी कमाने का जरिया है लेकिन समाजवादी समाज में वह सामाजिक जिन्दगी का एक जरूरी हिस्सा बन जायेगा इसी प्रकार सम्पत्ति की तरफ भी लोगों का रुख बदल जायेगा, मुनाफाखोरी और शोषण समाप्त हो जायेगा और ऐसे कामों को समाज में नीची एवं नफरत की निगाह से देखा जायेगा। इससे सम्पत्ति को अपनाने की लोगों की लालसा भी खत्म हो जायेगी। समाजवादी समाज में पारिवारिक जीवन का भी एक नया महत्त्व होगा और इन सब परिवर्तनों के फलस्वरूप पुरानी नैतिकता की जगह पर नये प्रकार की नैतिकता का विकास होगा। यह सही है कि यह सब परिवर्तन एक ही दिन में नहीं हो जायेंगे।

कम्युनिस्ट समाज

1. कम्युनिस्ट समाज श्रेणी रहित समाज होगा यानी उस समाज में न तो कोई पूँजीपति या मिल मालिक होगा न कोई उसका मजदूर। न कोई अमीर न कोई गरीब। सारा समाज स्वतंत्र व्यक्तियों का परिवार होगा जहाँ पैदावार के साधन, यानी कल-कारखाने, मिलें, जमीन आदि किसी एक आदमी की बपौती नहीं होंगे, बल्कि उन पर सबका अधिकार होगा, वे समाज की मिली जुली सम्पत्ति होंगे। वहाँ एक आदमी अपने फायदे के लिए बाकी लोगों का गला काटने की ताक में नहीं घूमेगा बल्कि सब मिलकर सबके भले के लिए काम करेंगे। सब मिलकर समाज के लिए काम करेंगे और समाज सबकी जरूरतों की देखभाल रखेगा, जिससे सब लोग आराम और सुख की जिन्दगी बिता सकेंगे। इसी बात को अगर हम एक सूत्र की शक्ल में रखें तो कम्युनिस्ट समाज में 'हर एक से उसकी योग्यता और शक्ति के हिसाब से काम लिया जायेगा और हर एक को उसकी आवश्यकताओं के हिसाब से दाम दिया जायेगा।' वहाँ एक की तकलीफ सबकी तकलीफ होगी और एक का सुख सबका सुख होगा। सब सबके लिए काम करेंगे और सबके लिए जियेंगे।

2. यह तभी हो सकेगा जब कम्युनिस्ट समाज में किसी चीज की कमी न हो हर एक चीज काफी तादाद में मौजूद हो। आये दिन कपड़ा, अनाज, शक्कर आदि की हायतौबा न लगी रहे जैसे आजकल हमारे देश में लगी रहती है। इसके लिए पैदावार का संगठन इस तरह किया जायेगा कि सबको सब चीजें काफी तादाद में मिल सकें, सिर्फ भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करनेवाली चीजें ही नहीं, यानी सिर्फ कपड़ा, मकान, खाना, रेलें आदि ही नहीं बल्कि स्कूल, सिनेमा, थियेटर, खेल के मैदान, किताबें, गाने-बजाने की सहूलियतें भी सबको हासिल हों, जिससे लोग जिन्दगी में शारीरिक और मानसिक दोनों सुखों का अनुभव कर सकें और उनकी जिन्दगी किसी भी तरह से अभाव को जिन्दगी न हो।

3. कम्युनिस्ट समाज एक अन्तरराष्ट्रीय समाज होगा। दूसरे देशों से अलग और उनके क्रान्तिकारी सहयोग के बगैर एक भी देश में सही मानो में कम्युनिस्ट समाज की स्थापना नहीं हो सकती है। अक्टूबर क्रान्ति के बाद सोवियत रूस को यदि पूँजीवादी देशों का मजदूर आन्दोलन और गुलाम तथा आर्थिक गुलाम देशों के आजादी के आन्दोलनों का सहयोग और दुनिया की प्रगतिशील जनता का समर्थन न मिला होता तो वहाँ समाजवाद की विजय किसी भी हालत में सम्भव न हो पाती।

कम्युनिस्ट समाज सभी राष्ट्रों के आपसी सहयोग और भाईचारे का समाज है। पूँजीवादी साम्राज्यवादी देशों को अपना माल बेचने के लिए बाजार चाहिए, अपना पैसा लगाने के लिए उपनिवेश चाहिए इसके लिए वे कमजोर देशों को गुलाम बनाते हैं। एक साम्राज्यवादी देश दूसरे साम्राज्यवाद देश से बाजार और उपनिवेश छीनने के लिए युद्ध छेड़ता है। कम्युनिस्ट समाज में पैदावार मुनाफे के लिए न होकर समाज की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए होंगी। इसलिए वहाँ एक देश दूसरे देश को गुलाम बनाने नहीं दौड़ेगा और न ही छीनाझपटी के लिए लड़ाइयाँ ठानेगा। हर एक देश हर देश की उन्नति में अपनी उन्नति समझेगा और इस प्रकार युद्धों का अन्त हो जायेगा।

आज हम जिन संस्थाओं को जरूरी समझते हैं कम्युनिस्ट समाज के आते-आते उनमें से बहुत-सी संस्थाएँ समाप्त हो जायेंगी। जैसे फौज, अदालत, जेल आदि। कम्युनिस्ट समाज अन्तरराष्ट्रीय समाज होगा जिसमें एक देश दूसरे देश को लूटने की न सोचकर उनकी उन्नति की बात सोचेगा। इसलिए उनमें लड़ाई न होकर भाईचारे और शान्ति का सम्बन्ध होगा। जब लड़ाइयाँ नहीं होंगी तो फौजपाटा भी नहीं होगा। इसी तरह कम्युनिस्ट समाज में इस्तेमाल को हर एक चीज काफी तादाद में सबके लिए आसानी से मिल सकेगी, यानी अभाव नाम की चीज वहाँ नहीं होगी। मालिक-मजदूर, जमींदार-किसान, अमीर-गरीब भी नहीं होंगे। जब सबको सब चीजें आसानी से मिल जायेंगी और किसी को किसी चीज का अभाव नहीं होगा तो उसके लिए चोरी, डकैती, गिरहकटी, जालसाजी, फरेब आदि भी नहीं होगा और जब यह सब नहीं होगा तो पुलिस, अदालत और जेल भी नहीं रह जायेंगी। दूसरे शब्दों में कम्युनिस्ट समाज में राजसत्ता, जो इन्हीं सब संस्थाओं के योग का दूसरा नाम है, की भी आवश्यकता नहीं रहेगी और वह संस्था भी बेकाम होकर समाप्त हो जायेगी। मतलब यह है कि कम्युनिस्ट समाज में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर या समाज का एक अंग दूसरे अंग पर जुल्म-जबदस्ती नहीं करेगा, कोई किसी को भी अपने आधीन बनाकर नहीं रख सकेगा और लोग निष्ठा भाव से बगैर दबाव के एक-दूसरे के साथ भाई-भाई की तरह रहने के आदी हो जायेंगे। मनुष्य समाज एक बहुत बड़ा अन्तरराष्ट्रीय जातियों का परिवार बन जायेगा जहाँ पर मनुष्य अपनी पटुता, द्रक्षता और शक्ति को प्रकृति पर विजय पाने में लगा सकेगा।

5. कम्युनिस्ट समाज में काम सिर्फ रोटी कमाने का साधन नहीं रहेगा। वह मनुष्य के स्वभाव का अंग बन जायेगा और लोगों को काम उनकी क्षमता और योग्यता के हिसाब से दिया जायेगा। काम का तरीका और उसका स्वरूप भी बदल

जायेगा। विज्ञान के विकास के साथ-साथ उसका रूखापन, भारीपन और दिलचस्पी की कमी भी नहीं रहेगी। काम की तरफ लोगों का भौतिक दृष्टिकोण भी बदल जायेगा और वे काम को समाज के प्रति अपना कर्तव्य समझकर पूरा करेंगे।

यह साफ है कि जनता और समाज में इस तरह का परिवर्तन एक ही दिन में नहीं किया जा सकता। जिस तरह का समाज इस समय हम अपने देश में देख रहे हैं उसके और कम्युनिस्ट समाज के बीच में एक और समाज गुजरेगा जिसे समाजवादी समाज कहेंगे। समाजवाद या सोशलिज्म कम्युनिज्म के पहले की अवस्था है।

पूँजीवादी समाज, समाजवादी समाज और कम्युनिस्ट समाज की तुलना

1. ***पूँजीवादी समाज*** श्रेणी समाज है। शोषण और मुनाफा इसका आधार है।

समाजवादी समाज इसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त हो जाता है लेकिन मजदूरों और किसानों का वर्ग भेद कुछ हद तक बना रहता है। मिसाल के तौर पर संशोधनवादी प्रतिक्रान्ति से पहले सोवियत रूस के कारखानों और सरकारी खेतों पर काम करनेवाले मजदूर सारी जनता की सम्पत्ति पर काम करते थे किन्तु सम्मिलित खेतों पर काम करनेवाले किसान अपने सामूहिक खेतों पर काम करते थे।

कम्युनिस्ट समाज समाजवादी समाज की ही तरह श्रेणी रहित समाज में यहाँ कोई किसी का शोषण नहीं करता। मजदूर, किसान, बुद्धिजीवी आदि सब लोग समाज के मेहनतकश अंग बन जाते हैं। वर्ग भेद बिल्कुल समाप्त हो जाता है।

2. ***पूँजीवादी समाज*** का आर्थिक आधार पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार है।

समाजवादी समाज का आर्थिक आधार पैदावार के साधनों पर समाज का अधिकार है, इस सामाजिक अधिकार की शक्लें है।

सारी जनता की राष्ट्रीय सम्पत्ति, जिसकी देखभाल सरकार के द्वारा होती है। जैसे प्रतिक्रान्ति से पहले के रूस के कारखाने या सरकारी खेत।

सहकारी समितियों और सम्मिलित खेतों की सम्पत्ति।

कम्युनिस्ट समाज का आर्थिक आधार पैदावार के साधनों पर सारी जनता का एक जैसा अधिकार है।

3. पूँजीवादी समाज में राजसत्ता शोषक वर्ग की राजसत्ता होती है जिसके जरिये शोषक वर्ग समाज के बहुमत पर हुकूमत करता है। यहाँ सारी ताकत शोषक वर्ग के हाथ में होती है।

समाजवादी समाज में राजसत्ता मजदूरों, किसानों की समाजवादी राजसत्ता होती है। यहाँ सारी शक्ति मजदूरों और किसानों के हाथ में होती है। आरम्भ में यह राजसत्ता देश के मजदूरों, किसानों के वर्ग शत्रुओं को दबाकर रखती है, देश में समाजवादी ढंग पर पैदावार का संगठन करती है और पूँजीवादी देशों के हमलों से समाजवादी देश की रक्षा करती है।

आगे चलकर जब शोषक वर्ग का अन्त हो जाता है तो उसका काम रह जाता है देश के आर्थिक निर्माण को कम्युनिज्म की तरफ ले जाना और समाजवादी देश की पूँजीवादी देशों के हमलों से रक्षा करना।

कम्युनिस्ट समाज में वर्गों का अन्त हो जाने से राजसत्ता की भी जरूरत नहीं रहती। लेकिन यह तभी हो सकता है जब सारी दुनिया में कम्युनिज्म की विजय हो जाय।

सोवियज राजसत्ता कम्युनिस्ट निर्माण का हथियार है। एक देश में कम्युनिज्म स्थापित हो जाने के बाद भी जब तक दूसरे देशों में पूँजीवाद कायम है तब तक पूँजीवादी देशों के हमलों से कम्युनिस्ट समाज की रक्षा करने के लिए राजसत्ता की जरूरत रहेगी।

पूँजीवादी घेरा समाप्त हो जाने पर अर्थात अधिकतर देशों में समाजवाद की स्थापना हो जाने पर कम्युनिस्ट समाज में राजसत्ता की आवश्यकता नहीं रहेगी।

4. पूँजीवादी समाज में काम एक बोझ होता है। वहाँ काम करनेवाला नीचा और काम न करनेवाला ऊँचा समझा जाता है।

समाजवादी समाज में हर नागरिक काम करना अपना कर्तव्य समझता है। वहाँ मेहनत से इज्जत मिलती है।

कम्युनिस्ट समाज में काम करना लोगों की आदत बन जाती है। सब सबके लिए काम करते हैं।

पूँजीवादी समाज में काम करनेवाले से शक्ति से बाहर काम लिया जाता है और वह जितना काम करता है उसका आधा-चौथाई भी उसे नहीं मिलता। मजदूर की मेहनत का आधा हिस्सा पूँजीपति हड़प जाता है।

समाजवादी समाज में सबसे शक्ति एवं क्षमता के हिसाब से काम लिया जाता है और काम के हिसाब से उन्हें मजदूरी व वेतन दिया जाता है।

कम्युनिस्ट समाज में सबसे शक्ति एवं क्षमता के हिसाब से काम लिया जायेगा और उनको जरूरत के हिसाब से चीजें दी जायेंगी।

समाज कैसे बदलता है?

उत्तर कुछ लोग कहते हैं कम्युनिज्म आदर्श के तौर पर किताबों में कितना ही अच्छा क्यों न हो वह कभी अमल की चीज नहीं बन सकता क्योंकि समाज का स्वरूप बदल जाने से मुनष्य के स्वभाव में कोई बुनियादी परिवर्तन थोड़े ही आ जायेगा। मनुष्य स्वभाव तो बुनियादी तौर पर हमेशा एक ही जैसा रहता है। अमीर-गरीब, राजा-प्रजा, मालिक-मजदूर, ऊँच और नीच यह तो हमेशा चले आये हैं और आगे भी रहेंगे। इस तरह की दलीलें अज्ञान-अशिक्षा की निशानी हैं।

इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि पुराने जमाने में सिर्फ जमीन और औजार (हल-बैल) आदि ही मिली-जुली सम्पत्ति नहीं होते थे, बल्कि पैदावार और रक्षा के काम में लोग मिल-जुलकर हिस्सा लेते थे। मेहनत-मजदूरी के बाद जो कुछ पैदा होता था वह भी एक की सम्पत्ति नहीं मानी जाती थी, उस पर सारे समाज का अधिकार होता था। इस तरह के प्राचीन कालीन गोष्ठी कबीलाई समाज अब भी कहीं-कहीं पर मौजूद हैं। उस समय पैदावार के साधन आज जैसे उन्नत न थे, विकास की बहुत नीची सतह पर थे और इसीलिए वे समाज काफी गरीब थे, लेकिन चूँकि वहाँ श्रेणियाँ नहीं थीं और पैदावार के साधनों तथा पैदा किये हुए माल पर सबका मिला-जुला अधिकार होता था इसलिए उस समाज को आदिकालीन कम्युनिस्ट समाज कहा जाता है।

धीरे-धीरे जैसे मनुष्य अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पैदावर के नये साधनों की खोज करता गया और प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाता गया वैसे-वेसे काम करने के मिले-जुले तरीके का स्थान अलग-अलग कामों में दक्षता के आधार पर श्रम विभाजन लेता गया। समाज में अलग-अलग पेशों का जन्म हुआ, अधिकतर लोग पैदावार के काम में लगे रहे और कुछ लोग पैदाबार के साधनों (जमीन, बैल आदि) पर अधिकार जमाकर चौधरी बन बैठे और इस तरह समाज श्रेणियों में बँट गया। साधनों के मालिक होने के नाते यह चौधरी लोग पैदावार पर दावा करने लगे।

जहाँ एक तरफ समाज के श्रेणियों में बँट जाने से शोषक और शोषित, अमीर और गरीब का जन्म हुआ वहाँ उससे एक फायदा भी हुआ। उससे पैदावार के साधनों में काफी उन्नति हुई, उसके बगैर पैदावार के साधनों में पूरी उन्नति सम्भव न

थी। श्रेणी समाज के सबसे पहले रूप को 'दास प्रथा' कहते हैं। दास और दासों की मेहनत के बगैर पुराने समाज की उन्नति सम्भव न थी। दास समाज की उन्नति ने अपने से ऊँचे समाज यानी सामन्तवादी समाज के लिए रास्ता साफ किया। दास समाज, दासों और दासों के मालिकों में बँटा था जिसमें दासों के कोई नागरिक अधिकार न थे। फिर आया सामन्तवादी समाज, इसकी दो मुख्य श्रेणियाँ हुईं सामन्त जो जमीन के मालिक थे और जो जमीन पर काम करते थे। दास समाज की तरह सामन्तवादी समाज का आधार भी शोषण ही था। फर्क था केवल शोषण के तरीकों में। दास पूरी तौर पर मालिक की सम्पत्ति होता था लेकिन उस शक्ल में किसान सामन्तशाह की सम्पत्ति नहीं माना जाता था। आगे चलकर जब सामन्तशाही शोषण बढ़ा तो किसान की हालत खेतिहर गुलाम अर्थात कृषक दास की हो गयी। सामन्त कृषक दास को अपने खेत पर कुछ समय काम करने के लिए मजबूर कर सकता था लेकिन कृषक दास बाकी समय अपने लिए भी काम कर सकता था। दास लोगों (गुलामों) को यह सहुलियत नहीं थी।

पैदावार के साधनों का विकास सामन्तशाही पर आकर रुक नहीं गया। पैदावार के नये तरीकों की खोज हुई और इसके साथ-साथ नयी श्रणियाँ भी पैदा हुईं, पूँजीपति और सर्वहारा यानी आजकल के मजदूर। जिस तरह दास प्रथा को हटाकर उसकी जगह सामन्तवाद ने ले ली थी उसी तरह सामन्तवादी समाज के ही पेट से पैदा होकर पूँजीवाद ने सामन्तवाद को हटाकर उसकी जगह ले ली। पूँजीवादी समाज सामन्तवादी समाज से ऊँचा समाज है। पूँजीवाद ने अपने से पहले के सभी समाजों के बनिस्बत पैदावार के साधनों को अधिक बढ़ाया और उन्नत किया है।

सर्वहारा से आपका क्या मतलब है?

उत्तर सर्वहारा समाज का वह वर्ग है जो जिन्दा रहने के लिए सिर्फ अपने काम करने की ताकत यानी श्रमशक्ति की बिक्री पर ही निर्भर करता है अर्थात जो अपने जिस्म की मेहनत करने की ताकत को बेचकर जिन्दा रह सकता है, वर्ग जिसके पास पैदावार के साधन नाम के लिए भी नहीं हैं और जिसकी जिन्दगी काम मिलने या न मिलने पर निर्भर करती है। मार्क्स में शब्दों में "उसके पास खोने के लिए अपनी जंजीर के अलावा और कुछ नहीं लेकिन पाने के लिए उसके लिए सारी दुनिया पड़ी है।"

सर्वहारा वर्ग ऐसा मजदूर जो आज हमें अपने चारों ओर मिलों, कारखानों में दिखाई पड़ता है, हमेशा से नहीं था। गरीब लोग और मेहनत-मजदूरी करनेवाले

तो पहले भी थे पर आज जैसा मिलों, कारखानों में काम करनेवाला सर्वहारा वर्ग नहीं था। सर्वहारा की खास बात यह है कि पैदावार के साधनों पर यानी काम करने के औजारों पर, उसका कोई अधिकार नहीं होता, वह दूसरे के औजारों पर काम करता है।

आप पूछ सकते हैं कि विघटन से (सोवियत संघ-प्र.) पहले के मजदूरों को सर्वहारा कहा जा सकता है। उत्तर है नहीं। उस समय सोवियत रूस के मजदूर को सर्वहारा कहना गलत होगा। सर्वहारा के पास पैदावार के साधन या काम करने के औजार आदि नहीं होते। वह दूसरों के औजारों पर काम करता है। मशीन पैदावार की साधन है, या यों कहिए सामान बनाने का औजार है। इस मशीन का मालिक होता है पूँजीपति और उस पर काम करता है मजदूर। सर्वहारा के पास अपने औजार नहीं होते यह तो हुई एक बात। दूसरी बात यह है कि सर्वहारा वर्ग का पूँजीपति वर्ग शोषण करता था। लेकिन सोवियत रूस में यह बात नहीं थी। वहाँ पूँजीपति वर्ग का खात्मा कर दिया गया और पैदावार के साधनों को उस वर्ग के हाथ से छीनकर 'राजसत्ता के सुपुर्द कर दिया गया और राजसत्ता पर अधिकार है मजदूरों का। वहाँ एक तरफ तो मजदूरों को चूसनेवाले पूँजीपति वर्ग का खात्मा कर दिया गया और दूसरी तरफ मजदूर थे पैदावार के साधनों के मिले-जुले तौर पर मालिक। इस तरह सोवियत रूस में मजदूर के शोषण के सारे दरवाजे बन्दर कर दिये गये थे। ऐसी हालत में वहाँ के मजदूर को सर्वहारा नहीं कहा जा सकता था। अक्टूबर क्रान्ति के बाद से रूस के सर्वहारा वर्ग ने नया जन्म लिया यह था सोवियत संघ का मजदूर वर्ग जिसने पैदावार के पूँजीवादी तरीके का अन्त कर दिया था जिसने पैदावार के साधनों पर समाजवादी अधिकार कायम कर लिया है और जो सोवियत समाज को कम्युनिज्म के रास्ते पर ले जा रहा था।

क्या प्रतिक्रान्ति से पहले के सोवियत समाज को कम्युनिस्ट समाज कह सकते हैं?

उत्तर नहीं सोवियत समाज को अभी कम्युनिस्ट समाज नहीं कहा जा सकता। यह सही है कि वहाँ पूँजीवादी शोषण और पूँजीपति वर्ग खत्म कर दिया गया लेकिन फिर भी वहाँ कम्युनिस्ट समाज नहीं था। सोवियत रूस में समाजवादी समाज की ही स्थापना हो पायी थी। समाजवाद कम्युनिज्म की पहली अवस्था है पूँजीवाद और कम्युनिज्मं के बीच की अवस्था, जो कम्युनिज्म के लिए रास्ता तैयार करती है।

सोवियत रूस में समाजवाद की विजय हो चुकी थी और वहाँ कम्युनिस्ट

निर्माण की ओर बढ़ना था। अगर वहाँ संशोधनवादियों की रहनुमाई में प्रतिक्रान्ति न हुई होती तो वहाँ पर जनता के काम की चीजें, जैसे खाना, कपड़ा आदि इतनी अधिक मात्रा में पैदा होता कि जल्दी ही लोगों को उनकी आवश्यकताओं के हिसाब से सामान दिया जा सकता था। उस हालत में वहाँ पर कम्युनिज्म का बुनियादी नारा "सबको आवश्यकता के हिसाब से जरूरत का सामान मिले" अमल में लाया जा सकता था। शिक्षा, चिकित्सा, पेंशन, छोटे-छोटे बच्चों की देखभाल (परिपालन) तथा दूसरी सार्वजनिक सुविधाएँ तो तब भी मुफ्त दी जाती थीं और कारखानों आदि में काम करने का दिन जो तब पाँच घण्टे का था और भी घटाया जा सकता था।

क्या दुनिया के एक भाग में पूँजीवाद के रहते एक देश में कम्युनिज्म कायम किया जा सकता है?

उत्तर यह सवाल सोवियत संघ में कम्युनिज्म की स्थापना को लेकर उठाया गया था। रूस में समाजवाद की विजय के बाद जब धीरे-धीरे कम्युनिस्ट निर्माण और कम्युनिस्ट समाज की स्थापना का सवाल आया तो कुछ लोगों को उसकी सम्भावना और सफलता में शक हुआ। उन्होंने पूछा कि क्या दुनिया के एक भाग में पूँजीवाद के कायम रहते सोवियत रूस में कम्युनिस्ट निर्माण सम्भव हो सकता है? इन लोगों को जवाब देते हुए कॉ. स्तालिन ने कहा कि हाँ सोवियत रूस के पूँजीवादी देशों से घिरे रहते हुए भी यहाँ कम्युनिस्ट निर्माण सम्भव है।

कम्युनिस्ट समाज की खास बात है कि किसी प्रकार का अभाव न होना अर्थात समाज में किसी चीज की कमी न हो और सबको सब चीजें आवश्यकतानुसार मिल सकें। हमारे यहाँ कहीं तो काम न मिलने के कारण कहीं जेब में काफी पैसा न होने के कारण न जाने कितने लोगों को अपनी आवश्यकताओं को दबाना पढ़ता है। कभी-कभी बीमार लोगों को दवा-दारू तक नहीं नसीब होती है। दूसरी तरफ अगर जेब में थोड़ा पैसा बचा भी लिया तो बाजार में चीजों का अभाव हो जाता है। आज अनाज नहीं, कल कपड़ा नहीं, तो परसों नमक, तेल, दियासलाई नहीं मिलती है। कम्युनिस्ट समाज इन सब बातों से बरी होता है।

सोवियत रूस में समाजवाद की विजय से वर्गों का अन्त हो गया था और पैदावार के साधनों में बहुत उन्नति हो गयी थी। जरूरत की सब चीजें समाज की आवश्यकता के हिसाब से पैदा की जाती थी और उन पर समाज का अधिकार होता था। इस प्रकार वहाँ पर अब कम्युनिस्ट समाज स्थापित करने की सभी शर्तें मौजूद थीं। वहाँ कम्युनिज्म की ओर बढ़ने का रास्ता साफ हो गया था। समाजवाद

की विजय ने वहाँ के आर्थिक विकास को इतना ऊँचा उठा दिया था कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्तों पर सही तौर पर अमल करने से वहाँ सोवियत समाज को कम्युनिस्ट निर्माण की ओर ले जाना सम्भव हो गया था।

पिछली लड़ाई (द्वितीय विश्व युद्ध-प्र.) में सोवियत रूस की शानदार जीत, पूर्वी यूरोप में जनता की लोकशाही की स्थापना, एशिया में प्रतिक्रियावादी शक्तियों पर चीनी जनता की विजय और उत्तरी कोरिया, वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया में साम्राज्यवाद की पराजय तथा सामजवादी ताकतों की विजय ने रूस में कम्युनिस्ट निर्माण के काम को और आसान बना दिया था।

यह कम्युनिस्ट निर्माण कोई एक दिन की चीज नहीं है। समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर पहुँचने का काम धीरे-धीरे पूरा किया जा सकता है। समाजवाद के बुनियादी सिद्धान्तों को और आगे ले जाना ही कम्युनिस्ट निर्माण का आधार है। यह बुनियादी सिद्धान्त है पैदावार के साधनों पर समाज का अधिकार, राष्ट्र को अर्थनीति की योजना के अनुसार चलाना, काम की उत्पादन शक्ति में उन्नति, काम के हिसाब से चीजों के बँटवारे के समाजवादी वसूल को आवश्यकता के हिसाब से चीजों के बँटवारे के कम्युनिस्ट सिद्धान्त की ओर ले जाना और समाजवादी राजसत्ता को सब तरफ से मजबूत बनाना।

आगे चलकर जब दूसरे देशों में भी समाजवाद की विजय हो जायेगी और सोवियत संघ पर बाहरी आक्रमण का कोई खतरा नहीं रह जायेगा तो राजसत्ता की भी आवश्यकता जाती रहेगी। आज जो शक्ति हथियार बनाने तथा फौज आदि रखने में खर्च हो रही है वह भी तब समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में खर्च होने लगेगी। वह कम्युनिज्म की ओर आगे बढ़ी हुई अवस्था होगी। अभी जब तक बाहरी आक्रमण का खतरा मौजूद है तब तक राजसत्ता को खत्म करने का सवाल नहीं उठता क्योंकि वैसा करने से कम्युनिस्ट निर्माण तो क्या हमें समाजवाद की विजय से भी हाथ धोना पड़ेगा।

समाजवाद आयेगा कैसे?

उत्तर जब तक पूँजीपति वर्ग के हाथों में पैदावार के साधनों पर अपना अधिकार जमाये रखने के लिए हथियार के तौर पर राजसत्ता की ताकत मौजूद है तब तक समाजवादी समाज कायम करना नामुमकिन है। इसलिए समाजवाद की स्थापना के लिए राजसत्ता का मजदूर वर्ग के हाथों में आना पहली शर्त है।

राजसत्ता पर विस्तार के साथ तीसरी किताब में लिखा जायेगा। यहाँ पर सिर्फ

इतना ही समझ लीजिए कि संगठित मजदूर वर्ग के नेतृत्व और जनता के सहयोग के बगैर पूँजीपतियों के हाथ से राजसत्ता छीनी नहीं जा सकती। दूसरी बात यह है कि सिर्फ लोकसभा में या असेम्बलियों में बहुमत पाने से ही राजसत्ता पर मजदूरों का अधिकार नहीं हो सकेगा। उसके लिए मजदूर वर्ग की राजसत्ता के सभी कलपूर्जों को अपने हाथ में लेना होगा। नहीं तो होगा यह कि धारा सभाओं में बैठे मजदूरों के प्रतिनिधि तो कानून पास करते रहेंगे और जब उन्हें लागू करने का समय आयेगा तो पूँजीपतियों और जमीदारों के भाई-भतीजों से लदी अदलातें, पुलिस, फौज उन्हें लागू करने से इन्कार करती रहेंगी। और इस प्रकार पुलिस, फौज, जेल, अदालत आदि के जरिये पूँजीपति राजसत्ता पर अपना अधिकार कायम रखेंगे, हालाँकि नाम के लिए विधानसभा और लोकसभा में बहुमत मजदूरों के प्रतिनिधियों का होगा।

यही कारण है कि कम्युनिस्ट कोरे सुधारवादी उपायों से ही समाजवाद तक पहुँचने में विश्वास नहीं करते। इसके लिए पूँजीवादी धारा सभाओं में सुधारों के लिए लड़ने के साथ-साथ मजदूर वर्ग के संगठन और उसकी ताकत को मजबूत करना बहुत जरूरी है क्योंकि मजदूर वर्ग की रहनुमाई में क्रान्तिकारी आन्दोलन के जरिये ही समाज को बदला जा सकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि कम्युनिज्म आ जाने पर सबकी निजी सम्पत्ति भी छीन ली जायेगी यह कहाँ तक सच है?

उत्तर कम्युनिस्ट समाज में पैदावार के साधान अर्थात मशीन, कारखाने आदि किसी एक की बपोती नहीं होंगे। कारखानों आदि के मालिक होंगे मजदूर और जमीन होगी किसानों की। मतलब यह है कि किसी के हाथ में ऐसी चीज नहीं रहने पायेगी जिसके जरिये वह दूसरों का शोषण कर सके। कम्युनिज्म के कुछ विरोधी कहते फिरते हैं कि कम्युनिस्ट समाज में किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नहीं रहने दी जायेगी। यह बात बिल्कुल गलत है। अगर एक मजदूर अपनी मजदूरी से कुछ पैसा बचाकर एक रेडियो या एक ग्रामोफोन खरीद लेता है तो वह उसकी निजी सम्पत्ति होगी, लेकिन वह उससे किसी का शोषण नहीं करता इसलिए उसे उसके पास से लेने के कोई माने नहीं होते। सोवितय रूस में, जहाँ समाजवादी समाज कायम था वहाँ के मजदूर और किसान रेडियो, ग्रामोफोन, साईकिल, मोटर-साईकिल आदि खरीदते थे। पूँजीवादी समाज में मजदूर व किसान इन चीजों की सोच भी नहीं सकते। समाजवादी समाज में मजदूरों, किसानों का शोषण बन्द

हो जाने से उनके पास इतना रुपया जमा हो जाता है कि वे आराम की और चीजें जैसे मेज, कुर्सी, साईकिल, रेडियो, अच्छे और का़फी कपड़े आदि ख़रीद सकें। हमारे देश का मजदूर तो सारी जिन्दगी मेहनत करने के बाद भी जाड़ों से बचने के लिए एक ऊनी कोट नहीं बनवा पाता है। कम्युनिस्ट समाज में निजी सम्पत्ति पर कोई रोक नहीं होगी, सिर्फ ऐसी सम्पत्ति पर रोक होगी जिसके जरिये एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण करता है, यानी कोई पूँजी खड़ी नहीं कर सकेगा और उत्पादन के साधनों पर अपनी बपौती नहीं जमा सकेगा, लेकिन जो सम्पत्ति दूसरों के शोषण करने का साधन नहीं बन सकती उसके अन्त करने का कोई सवाल नहीं उठता। अगर किसी ने अपनी नौकरी से कुछ बचाकर अपने रहने के लिए एक मकान बनवा लिया है तो उस पर रोक लगाने का कोई सवाल नहीं उठता लेकिन मकान बनवाकर किराये पर उठाने, पगड़ी वसूल करने की इजाजत किसी को नहीं होगी।

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और क्रान्ति

प्रश्न कम्युनिस्ट पूँजीवादी समाज को समाप्त करना चाहते हैं तो फिर पूँजीवाद के साथ शातिपूर्ण सह-अस्तित्व के क्या माने हैं?

उत्तर पहली बात तो यह है कि कम्युनिस्ट पूँजीवाद के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की बात कभी नहीं करते। वे पूँजीवादी राज्यों और समाजवादी राज्यों के बीच शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व चाहते हैं। और कम्युनिस्टों का यह नारा आज कोई नया नारा भी नहीं है। वे तो इसे उसी दिन से दोहराते आ रहे हैं जिस दिन 1917 में सोवियत रूस में मजदूरों-किसानों की पहली हुकूमत की बुनियाद पड़ी थी।

कम्युनिस्ट एक देश या एक राष्ट्र द्वारा दूसरे देश या राष्ट्र के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप का हमेशा से विरोध करते आये हैं। उनका कहना है कि किसी देश की जनता अपने यहाँ किस प्रकार की समाज व्यवस्था और किस प्रकार की सरकार चाहती है, इसका फैसला वह स्वयं कर देगी। आखिर क्रान्ति कोई ऐसी चीज तो है नहीं कि बाजार में बिकनेवाले माल की तरह जहाज में भर एक जगह से दूसरी जगह भेजी जा सके और फिर अगर किसी देश की जनता उसे खरीदने या अपनाने से इन्कार करे तो संगीन की नोक के सहारे जबदरस्ती उस पर लाद दी जाय। अगर किसी देश में क्रान्ति की परिस्थितियाँ पककर तैयार नहीं हैं या वहाँ की जनता अपने अनुभव से इस नतीजे पर नहीं पहुँच पाती है कि मौजूदा समाज व्यवस्था और उसे बचाकर रखनेवाली सरकार को हटाकर दूसरी समाज व्यवस्था और दूसरी

सरकार कायम किये बगैर उसकी परेशनियाँ हल नहीं हो सकेंगी, दूसरी शब्दों में अगर जनता क्रान्ति के लिए तैयार हो तो वहाँ बाहर से आकर क्रान्ति नहीं करायी जा सकती।

कम्युनिस्ट क्रान्ति के निर्यात में विश्वास नहीं करते क्योंकि उन्हें हर देश की जनता पर, उसकी क्रान्तिकारी सूझबूझ और जुझारूपन पर अडिग विश्वास है। वे जानते हैं कि अगर लड़ाई किसी देश की जनता और वहाँ के शोषक वर्ग तक ही सीमित रहे और बाहर से कोई हस्तक्षेप न हो तो वहाँ पर निश्चित रूप से जीत जनता की ही होगी। इतिहास में जब भी किसी देश की जनता ने सामाजिक क्रान्ति द्वारा शोषण का जुआ उतार फेंकने की कोशिश की है तो उस देश के शोषक वर्ग ने बाहर की सहायता लेकर ही देशवासियों की लाशों के ढेर लगा दिये हैं। सन 1871 में जब फ्रांस के मजदूरों ने पहली मजदूर सरकार के रूप में पेरिस कम्यून की स्थापना की, तो फ्रांस के शोषक वर्ग ने जर्मन सेनाओं की सहायता से उसे खून में डुबो दिया था। फिर 1917 में अक्टूबर क्रान्ति को प्रतिक्रियावादी क्रान्ति में बदलने के ख्याल से 14 पूँजीवादी राष्ट्रों ने मिलकर रूस पर हमला किया था। वे अपने इरादों में सफल नहीं हो सके यह दूसरी बात है। आस्ट्रिया, जर्मनी, स्पेन, ग्रीस आदि देशों का अनुभव भी यही बतलाता है कि अगर वहाँ की प्रतिक्रियावादी ताकतों को साम्राज्यवादियों ने बाहर से सहायता न भेजी होती तो वहाँ का नक्शा आज दूसरा ही होता। कोरिया का बँटवारा और कोरिया के एक भाग पर साम्राज्यवादी पिट्ठुओं की हुकूमत बाहरी सहायता के बल पर ही कायम है। क्यूबा की जनवादी सरकार को उलटने की कोशिश आज भी लगातार जारी है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि किसी देश की क्रान्तिकारी जनता और क्रान्ति आन्दोलन को दबाने के लिए अगर साम्राज्यवादी बाहर से आकर उस देश पर प्रतिक्रान्ति लादने की कोशिश करेंगे और वहाँ की प्रतिक्रियावादी ताकतों की सहायता के लिए सेना और हथियार भेजेंगे तो भी शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्त्व के नाम पर कम्युनिस्ट दूर खड़े तमाशा देखते रहेंगे। शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की यह समझ संशोधनवादी समझ है। कम्युनिस्ट बाहर से जाकर हथियारों के सहारे किसी देश पर क्रान्ति लादने नहीं जायेंगे साथ ही वे यह भी गवारा नहीं करेंगे कि क्रान्ति को दबाने के लिए कोई बाहरी ताकत किसी देश पर प्रतिक्रान्ति लादे।

कहने का मतलब यह है कि शान्तिपूर्ण सह-अस्तिव की बात एक क्रान्तिकारी या क्रान्ति में विश्वास रखनेवाला ही कर सकता है क्योंकि वह जानता है कि अन्त में यह मार्ग जनता की विजय का मार्ग है।

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का यह मतलब निकालना भी गलत होगा कि कम्युनिस्ट वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को छोड़कर विरोधी वर्गों के बीच सह-अस्तित्व की बात करने लगेंगे। यह समझ भी सुधारवादियों और संशोधनवादियों की है।

हम कम्युनिस्ट जानते हैं कि जहाँ विरोधी वर्ग हैं वहाँ उन वर्गों के बीच संघर्ष भी होगा। हम यह भी जानते हैं कि दो विरोधी वर्गों में इस संघर्ष का अन्त अनिवार्यतः शोषक वर्ग की समाप्ति में होगा और यही हमारी भाषा में क्रान्ति है। क्रान्ति परिवर्तन का मूल मंत्र है, पूँजीवाद से समाजवाद की ओर जाने का एक मात्र रास्ता है। शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के नाम पर इस रास्ते को छोड़ देने की माँग वे ही लोग उठाते हैं जो पूँजीवाद को एक निरन्तर व्यवस्था के रूप में हमेशा हरा-भरा देखना चाहते हैं। लेकिन इतिहास की गति किसी के रोके तो रुकी नहीं है।

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व आज के युग में वर्ग संघर्ष का एक विशेष रूप है सुधारवादी-संशोधनवादी लोग शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की आड़ में वर्गों के विरोधाभास पर पर्दा डालना चाहते हैं। उनका कहना है कि शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के बाद वर्ग संघर्ष की बात का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा और इस प्रकार दुनिया में एक सामाजिक शान्ति स्थापित हो जायेगी। यह लोग शान्ति स्थापित करने के नाम पर मजदूर वर्ग से उसका एकमात्र हथियार (वर्ग संघर्ष) छीनकर उसे अपंग बना देना चाहते हैं।

दूसरे शब्दों में वर्ग संघर्ष और शान्ति का जन्म पूँजीवाद के अपने विरोधाभासों के बीच से होता है। और कल अगर सोवियत रूस और अमरीका के बीच कोई निःशस्त्रीकरण समझौता हो जाय तो उससे अमरीका में वर्गों का अन्त थोड़े ही हो जायेगा। अमरीकी शोषकों के खिलाफ वहाँ की जनता का वर्ग संघर्ष तो चलता ही रहेगा। इस संघर्ष का अन्त तो वहाँ पर पूँजीवाद को दफनाकर ही किया जा सकेगा।

शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के नाम पर हमारे सुधारवादी दोस्त जब हम कम्युनिस्टों से वर्ग संघर्ष और क्रान्ति को छोड़ने की बात करते हैं तो वे छिपे तौर पर अपने मालिकों (साम्राज्यवादियों) के लिए जिन्दगी के चार दिन और माँगते हैं और ठीक यही खैरात हम उन्हें दे नहीं सकते।

तो आज के युग में शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व वर्ग संघर्ष की ही एक शक्ल है। (एकमात्र और सर्वोच्च शक्ल नहीं)। वह वर्ग संघर्ष को समाप्त नहीं बल्कि और तेज करना है। और इस नाते शान्ति एवं शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की लड़ाई

को कामयाब बनाने के लिए हमें पूँजीवाद के खिलाफ राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक तीनों ही क्षेत्रों में मजबूत मुहिम चलानी पड़ेगी, वर्ग संघर्ष पर आधारित क्रान्तिकारी आन्दोलन को तेज करना पड़ेगा।

कार्ल मार्क्स कौन थे?

उत्तर कार्ल मार्क्स और उनके साथी एंगेल्स जर्मनी के रहनेवाले थे। पूँजीवादी समाज नया है, कैसे पूँजीपति वर्ग मजदूर और सारी जनता को लूटता है, उसे कौन और कैसे खत्म करेगा, आनेवाला समाज यानी कम्युनिस्ट समाज कैसा होगा, मजदूर वर्ग को क्या करना चाहिए आदि बातें सही तौर से सबसे पहले इन्हीं दो नेताओं ने मजदूरों के सामने रखी थी। आज भी दुनिया-भर का मजदूर आन्दोलन इन्हीं दो नेताओं के बताये रास्ते पर चल रहे हैं। यों तो मार्क्स और एंगेल्स से पहले ऐसे कितने ही सुधारक हुए थे जिन्होंने पूँजीवाद की बुराइयों को देखा और उससे पैदा होनेवाली गरीबों और मजदूर वर्ग की तकलीफों को महसूस किया और सच्चे दिल से उन्हें दूर करने की कोशिश भी की। इनमें से कुछ के पास मजदूरों की गिरती हालत पर तरस था, दया थी पर दवा न थी। वे मजदूरों को गरीबी से छुटकारा पाने का उपाय न बता सके। कुछ ने उपाय भी बताये लेकिन उनसे मजदूरों का कोई लाभ न हो सका। यह लोग व्यक्ति की मुनाफे की हवस और दुष्टता को गरीबी और शोषण का कारण बताते थे और उन बुराइयों को बुरे मनुष्यों की आन्तरिक सद्भावनाओं को जगाकर दूर करना चाहते थे। इसके लिए वे मुनाफाखोरों से मुनाफे की हवस छोड़ने की अपीलें करते थे। आजकल भी इस तरह के ईमानदार सुधारक हैं। लेकिन वे अपने नेक इरादों को असली शक्ल देने के लिए सही उपाय नहीं बता पाते हैं।

मार्क्स ने समाज के श्रेणी स्वरूप को पहचाना और बतलाया कि पूँजीपति किस तरह मजदूर वर्ग का शोषण करता है। मार्क्स ने यह भी बतलाया कि एक अवस्था आ जाने के बाद पूँजीवाद समाज की पैदावार और पैदावार के साधनों के विकास के रास्ते में रोड़ा बनने लगता है, पैदावार को आगे बढ़ाने के बजाय उसे रोकने लगता है। उस समय समाज में एक तरफ तो जरूरत की सब चीजों की, यहाँ तक कि खाने-कपड़े तक की कमी दिखाई पड़ने लगती है। गरीबी, बेकारी बढ़ने लगती है, चीजें महँगी होने लगती हैं और दूसरी तरफ बड़ी लड़ाइयों की तैयारी होने लगती हैं। एक तरफ मुनाफाखोरी और चोरबाजारी के जरिए वह जनता को भूखों तड़पाकर मारता है और दूसरी तरफ कमजोर देशों को गुलाम बनाने के लिए

लड़ाइयाँ छेड़कर हथियारों की तिजारत से मुनाफा कमाता है और बम गिराकर जनता को मारता है। तब पूँजीपतियों की जिन्दगी जनता की मौत बन जाती है। जब यह हालत पैदा हो जाती है तो समाज की भलाई के लिए पूँजीवाद का खत्म होना या खत्म किया जाना जरूरी हो जाता है।

इसका मतलब यह कि समाज और आगे तभी बढ़ सकता है जबकि उसकी बागडोर पूँजीपतियों के हाथ से निकलकर सर्वहारा वर्ग यानी मजदूरों के हाथ आ जाय। इसके लिए जरूरी है कि मजदूर वर्ग मजदूर सभाओं, सहयोग समितियों और अपनी एक राजनीतिक पार्टी में संगठित हो, ऐसी पार्टी जिसकी नीति श्रेणी संघर्ष की वैज्ञानिक समझ पर आधारित हो। इस तरह का कदम उठाने से मजदूर वर्ग मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर कम्युनिस्ट समाज की बुनियाद खड़ी कर सकेगा।

मार्क्स ने मजदूरों को सिर्फ सिद्धान्त ही नहीं अमल के तरीके भी बतलाये। सिद्धान्त और अमल सम्बन्धी मार्क्स की इन शिक्षाओं को मार्क्सवाद कहते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि कम्युनिस्ट हिंसा में विश्वास करते हैं। क्या अहिंसात्मक उपायों से पूँजीवाद को खत्म करना सम्भव नहीं है?

उत्तर कम्युनिस्ट शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक समाज स्थापना में विश्वास करते हैं, इसके लिए वे उन सभी ताकतों को समाज से हमेशा के लिए खत्म कर देना चाहते हैं जो अशान्ति और हिंसा फैलाती हैं। और समाज में अशान्ति और हिंसा कौन फैला रहे हैं वह भी साफ है   पूँजीपति वर्ग और उसकी सरकारें। मुनाफा बढ़ाने के लिए वे चोर-बाजारी करते हैं, जनता का अनाज दबा लेते हैं और इस तरह लोगों को मौत के हाथों सौंप देते हैं, मजदूर का शोषण करते हैं, कम मजदूरी पर ज्यादा काम करवाते हैं, छंटनी करते हैं और इस तरह मजदूर के बीबी-बच्चों को तड़पा-तड़पाकर मारते हैं। भूख और बीमारी का शिकार बनाते हैं, और जब भूखे लोग इसके खिलाफ आवाज उठाते हैं, प्रदर्शन करते हैं तो पुलिस और फौज ले आते हैं और निहत्थी, शान्त जनता पर गोलियाँ बरसाते हैं, उनके नेताओं को जेल में डाल देते हैं, फाँसी पर लटकाते हैं और जब जनता इतने पर भी अपने हकों की माँग नहीं छोड़ती तो वे गाँव के गाँव जलाकर भस्म कर देते हैं, औरतों को बेइज्जत करते हैं। यह सब हिंसा नहीं तो क्या है? कम्युनिस्ट ऐसी हिंसा को हमेशा के लिए दफना देना चाहते हैं।

पूँजीपति अपने ही देश में हिंसा और अशान्ति फैलाकर संतोष नहीं करते। मुनाफे का भूत दुनिया के हर कोने में उनका पीछा करता रहता है और वे मुनाफे की थैलियाँ बढ़ाने की धुन में अपने से कमजोर देशों को गुलाम बनाते हैं। कमजोर देश की जनता अगर चुपचाप उनकी गुलामी कबूल नहीं कर लेती तो वहाँ खून की नदियाँ बहा देते हैं, जैसे अंग्रेजों ने हिन्दुस्तासन में सन् 1857 और 1942 में किया था और जैसा कोरिया में अमरीका ने किया था या अल्जीरिया में फ्रांसीसियों और अंगोल में पुर्तगालवालों ने किया था और जैसा वियतनाम में अमरीका ने किया था।

समय-समय पर दुनिया की फिर से बन्दरबाँट करने के लिए पूँजीपति आपस में लड़ते हैं। इन लड़ाइयों में वे सारी दुनिया को खून में डुबो देते हैं। इन लड़ाइयों में भी तबाह होती है जनता और थैलियाँ भरती हैं पूँजीपतियों की। और जब मजदूर वर्ग के नेतृत्व में किसी देश की जनता अपने यहाँ से इनका पत्ता काट देती है, जैसा सन् 1917 में रूस के मजदूरों ने और पिछली लड़ाई के बाद पूर्वी यूरोप की जनता ने और चीन ने किया, तो साम्राज्यवादी पूँजीपति खासे दुनिया की शान्ति के ठेकेदार बन जाते हैं और समाजवादी देशों के खिलाफ युद्ध की तैयारी करने लगते हैं जैसे इस समय अमरीका, इंलैण्ड कर रहे हैं।

पूँजीपति दुनिया में लड़ाइयाँ छेड़ते हैं। कम्युनिस्ट दुनिया से इन लड़ाइयों और लड़ाइयों को छेड़नेवालों को हमेशा के लिए मिटा देना चाहते हैं।

और इसीलिए यह कहना गलत है कि कम्युनिस्ट हिंसा में विश्वास करते हैं। कम्युनिस्ट तो दुनिया में हिंसा, अशान्ति और उसके फैलानेवालों का खात्मा करने में विश्वास करते हैं।

"युद्धों का अन्त, राष्ट्रों के बीच शान्ति, लूट और हिंसा का खात्मा ठीक यही तो हमारा आदर्श है।" (लेनिन)।

अब सवाल उठता है कि क्या अहिंसात्मक उपायों से पूँजीवाद को खत्म किया जा सकता है। यह एक अच्छा विचार है और अगर शान्तिपूर्ण उपायों से पूँजीवादी समाज को बदला जा सके तो कम्युनिस्ट कभी उसमें बाधा नहीं डालेंगे। लेकिन आज तक का इतिहास और तजुरबा बताता है कि यह सिर्फ एक अच्छा विचार मात्र है। पूँजीपति कभी शान्तिमय उपायों से क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ने नहीं देते। शान्तिमय अहिंसात्मक और वैधानिक उपायों की दुहाई पूँजीपति तभी तक देते हैं जब तक उन्हें यकीन रहता है कि इससे उनके मुनाफे पर आँच नहीं आयेगी और सरकार पर उनका अधिकार बना रहेगा। ज्यों ही मजदूर आन्दोलन

इस हद से बाहर होने लगता है, यानी उन्हें इस बात का खतरा होने लगता है कि आन्दोलन से उनके हाथ से सरकार की ताकत मिट जायेगी त्यों ही अपना वैधानिकता का नकली जामा उतार फेंकते हैं और खुले तौर पर अवैधानिक हिंसात्मक उपायों से काम लेने लगते हैं। उस समय उनका जनवाद का ढकोसला भी हवा हो जाता है। 1936 में स्पेन में जब जनता के प्रतिनिधियों का धारा सभा में बहुमत हो गया तो वहाँ के पूँजीपतियों ने अपने ही बनाये विधान को ठोकर मार दी और इटली तथा जर्मनी की फौजों की मदद से गृहयुद्ध छेड़ दिया था। अपने देश में भी कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के नेतृत्व में गठित केरल और बंगाल की सरकारों को उलटने के लिए अहिंसावादी कांग्रेसियों ने कुछ कम हिंसात्मक उपायों से काम नहीं लिया। पाकिस्तान में वहाँ के शासक वर्ग ने तो सभी रिकॉर्ड तोड़ दिये। बंगला देश में अपने ही भाइयों को कुचलने में उसने क्या कुछ नहीं किया और अभी हाल में चिली में भी इसी सच्चाई को दुहराया गया। कम्युनिस्ट इस ऐतिहासिक सच्चाई की तरफ आँख बन्द नहीं करते। वे जानते हैं कि बस चलते पूँजीपति कभी भी अहिंसात्मक उपायों को सफल नहीं होने देंगे। वे यह भी जानते हैं कि पूँजीपतियों की शान्ति, अहिंसा और विधानवाद की बातें जनता की आँखों में धूल झोंकने की बातें हैं। अपने ही देश में देखिए शान्ति, अहिंसा की रामनामी जपनेवाले गाँधीवादी कांग्रेसियों ने क्या कुछ कम किसानों, मजदूरों की जाने ली हैं? कहने का मतलब है कि पूँजीपति खुद तो हिंसा करते ही हैं साथ ही मजदूर वर्ग के सामने भी कोई दूसरा चारा नहीं छोड़ते। वे उन्हें भी उन्हीं उपायों का सहारा लेने के लिए मजबूर करते हैं। एंगेल्स के शब्दों में "अगर पूँजीपतियों की हरकतों से दलित मजदूर वर्ग को अन्त में क्रान्ति का सहारा लेना पड़ता है। तो कम्युनिस्ट मजदूरों के आदर्श के लिए उतनी ही मुस्तैदी से लड़ेंगे जितनी मुस्तैदी से वे उसका प्रचार करते हैं।"

पूँजीवादी समाज को क्रान्तिकारी उपायों से ही बदला जा सकता है यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है और इस पर कम्युनिस्टों को पूरा विश्वास है।

❑❑❑

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को पढ़ने-पढ़ाने के दो तरीके हैं। एक तरीका है, उसे कोरे सिद्धान्त की तरह किताबी तौर पर पढ़ना और दूसरा तरीका है, उसे जनता की रोजमर्रा की जिन्दगी से मिलाकर रचानात्मक तौर पर पढ़ना। किताबी तौर पर पढ़ने-पढ़ाने से मतलब है जैसे हमारे देश के स्कूलों में किताबें पढ़ाई जाती हैं या यों कहिए कि रटाई जाती हैं।

इस तरह से पढ़ना-पढ़ाना मजदूरों और किसानों को बड़ा रूखा लगता है। इससे उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पढ़ने-पढ़ाने का यह तरीका गलत है।

रचनात्मक तरीका यह है कि मार्क्सवाद की हर एक बात को अपने चारों तरफ की जिन्दगी से मिसालें लेकर उन पर लागू करते चलना। इसके बगैर मार्क्सवाद निर्जीव-सा लगेगा। मजदूर को उसके शहर और कारखानों की मिसालों के साथ समझाने से उसे मार्क्सवाद एक जिन्दा सिद्धान्त लगेगा। तभी उसे मार्क्सवाद में अपनी जिन्दगी के सब सवालों का हल नजर आयेगा। इसे कहते हैं सिद्धान्त को काम और जीवन की कसौटी पर उतारते हुए पढ़ना-पढ़ाना। इसी तरह किसानों को समझाने के लिए उनकी जिन्दगी से मिसालें लेनी चाहिए।

-शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

मूल्य : दस रुपये